Original Research Paper

Volume : 5 | Issue : 7 | July 2016 • ISSN No 2277 - 8179 | IF : 3.508 | IC Value : 69.48

Sallekhana in Jain Philosophy

History

KEYWORDS :

Dr Nidhi Jain M.A. ,Ph.D, Lecturer Depp. of History, St. Wilfred's PG College, Mansarover -Jaipur -302020

सल्लेखना जैन धर्म और दर्शन में चारित्र का प्राणतत्त्व है चाहे श्रावक के व्रत हो या मुनियों के व्रत हो, दोनों के ही लिए चारित्र के साथ प्राणवायु के समान सल्लेखना का महत्त्व है। जैसे प्राण वायु के बिना जीव का अस्तित्व समाप्त हो जाता है, वैसे ही सल्लेखना के बिना अणुव्रतों और महाव्रतों का महत्त्व समाप्त हो जाता है। सल्लेखना का प्रयोग जीवन के अंत में भले ही हो किन्तु उसके पालन और अभ्यास की भावना अणुव्रत तथा महाव्रत के संकल्प लेते ही प्रारंभ हो जाती है। आम तौर पर यह समझा जाता है कि सल्लेखना का अर्थ मरना है किन्तु ऐसा कुअर्थ कदापि नहीं है। जैनदर्शन में तो सल्लेखना को मृत्यु महोत्सव कहा जाता है। अरे ! जगत् के प्राणियों ! मरना तो सबको ही है चाहे सुमरण हो या कुमरण, परंतु मरण के साथ उत्साह का संगम हैं, जिसे जैन आचारशास्त्र सल्लेखना नाम देता है। सल्लेखना शब्द स्वयं सुअर्थ को सूचित कर रहा है। अणुव्रती और महाव्रती का मरण उत्साह के साथ किया जाता है तो मोक्षमार्ग में पालन किये हुए व्रतों की सार्थकता सिद्ध हो जाती है। इसीलिए आचार्य उमास्वामी ने एक लघु सूत्र के द्वारा महान् प्रेरणा जगत् के जीवों को प्रदान की है। मारणांतिकी सल्लेखनां जोषिता अर्थात् मरण का समय निकट आने पर प्रीति पूर्वक सल्लेखना को धारण करना चाहिए ऐसा आचार्य उमास्वामी का उपदेश है। इस सूत्र में जोषिता शब्द अत्यंत मार्मिक है। सल्लेखना के विषय में जोषिता शब्द को जैनागम का ह्रदय कहे तो कोई अतिश्योक्ति नहीं होगी। जोषिता शब्द का भाष्य करते समय पूज्यपाद स्वामी कहते हैं कि जोषिता शब्द के स्थान पर सेविता शब्द रख दे तो क्या आपत्ति होगी, ऐसा प्रश्न स्वयं पूज्यपाद स्वामी ने उठाया है। सर्वज्ञ की वाणी का यह आश्चर्य है। इस प्रश्न का उत्तर भी स्वयं पूज्यपाद स्वामी देते हुए कहते है कि सेविता के स्थान पर जोषिता शब्द रखने से विशेष शब्द ध्वनित होता है, क्योंकि सेविता अर्थ केवल सेवन करना होता है, जबकि जोषिता का अर्थ प्रीतिपूर्वक सेवन करना होता है। सल्लेखना कभी जबरदस्ती नहीं कराई जाती है। साधक स्वयं स्वेच्छा पूर्वक प्रेम भाव से सल्लेखना धारण करता है। व्याकरण शास्त्र में जुषप्रीतिसेवनयोः जुष् धातु का अर्थ–प्रीति पूर्वक सेवन करना होता है, इसलिए जोषिता शब्द से अर्थ निकलता है कि सल्लेखना को प्रेम पूर्वक धारण किया जाता है।

सल्लेखना शब्द में सत् + लेखन दो शब्द है, जिसका अर्थ है कि सत् अर्थात् समीचीन प्रकार से लेखन, कृष् अथवा कषाय और शरीर का विवेक पूर्वक क्रमशः कृष् करना सल्लेखना है। आचार्य समन्तभद्र ने रत्नकरण्डकश्रावकाचार में सल्लेखना का स्वरुप और हेतु इस प्रकार प्रदर्शित किये हैं–

उपसर्ग आने पर, दुष्काल होने पर, बुढापा आने पर, रोगादिक उपस्थित होने पर, जिनका प्रतीकार नहीं किया जा सके, धर्म के लिए शरीर का त्याग करना सल्लेखना कहलाती है।

इस प्रकार शरीर का त्याग च्युत, च्यावित और त्यक्त के भेद से तीन प्रकार का होता है।

च्युत– आयु समाप्त होने पर मृत्यु के द्वारा जो शरीर छूटता है उसे च्युत कहते हैं।

च्यावित–आयु समाप्त होने का अवसर न आने पर भी विष वेदना, रक्तक्षय, भय, शस्त्रग्रहण, संक्लेश, आहार तथा श्वास के निरोध से असमय में जो शरीर छुड़ाया जाता है, उसे च्यावित कहते हैं।

त्यक्त– जिनका प्रतीकार न किया जा सके, ऐसे उपसर्गादिक के उपस्थित होने पर रत्नत्रय रुप धर्म की रक्षा के निमित्त जो शरीर छोड़ा जाता है, उसे त्यक्त कहते है।

जिस प्रकार मकान में आग लगने पर पहले उसे बचाने का प्रयत्न किया जाता है, परन्तु जब बचाना अशक्य हो जाता है तब उसमें रखी हुई प्रमुख वस्तुओं को लेकर मनुष्य उस मकान से अलग हो जाता है, उसका त्याग कर देता है। इसी प्रकार उपसर्ग आदि के आने पर मनुष्य पहले दूर करने का प्रयत्न करता है,परंतु जब अनुभव हो जावे कि इन्हें दूर नहीं किया जा सकता है तब अपने रत्नत्रय रुप धर्म की रक्षा के अभिप्राय से शरीर त्याग किया जाता है। इसी को सल्लेखना आराधना या संन्यास मरण कहते है। इनके भक्तप्रत्याख्यान, इंगिनीमरण और प्रायोपगमन के भेद से तीन भेद होते हैं। जिसमें नियम या यम रुप से आहार का त्याग किया जाता है उसे भक्तप्रत्याख्यान मरण कहते है। समय की अवधि लेकर जो आहार का त्याग होता है उसे नियम रुप त्याग कहते है और जो जीवन पर्यंत के लिए त्याग किया जाता है उसे यम रुप त्याग कहते है। यदि अच्छे होने की संभावना दिखाती है तो नियम रुप त्याग होता है। इस भक्तप्रत्याख्यान नामक संयास में क्षपक, अपने शरीर की टहल स्वयं कर सकता है तथा दूसरों से भी करा सकता है। आहार के त्याग के साथ जिसमें शरीर की टहल स्वयं तो की जाती है परंतु दूसरों से कराई जाती है उसे इंगिनी मरण कहते है और जिसमें आहार त्याग के साथ शरीर की टहल न स्वयं की जाती है और न दूसरों से कराई जाती है उसे प्रायोपगमन कहते है। आचार्य ने सल्लेखना का मुख्य उद्देश्य धर्मार्थ बतलाया है अर्थात् रत्नत्रय रुप धर्म की रक्षा करना ही सल्लेखना का उद्देश्य है। अतः जहाँ कषाय के वशीभूत होकर विष, शस्त्र, जलावगाहन, पर्वतपतन, श्वासनिरोध तथा अग्निदाह आदि के द्वारा शरीर घात किया जाता है, वहाँ सल्लेखना नहीं होती। वह तो प्राण –घात हिंसा का ही एक रुप माना जाता है।जिस प्रकार जीवन पर्यंत शस्त्र का अभ्यास करने वाला यदि युद्ध में चूक जाता है तो उसका शस्त्र अभ्यास निष्फल कहा जाता है, उसी प्रकार जो व्यक्ति जीवन भर तप धारण करता है परंतु अंत समय संन्यास धारण नहीं करता है तो उसका तप निष्फल हो जाता है क्योंकि अंत समय में संन्यास धारण करना ही तप का फल है, इसलिए अपनी सामर्थ्य के अनुसार संन्यास धारण करने का पूर्ण प्रयत्न करना चाहिए। सल्लेखना को धारण करने वाला पुरुष राग, द्वेष, ममत्व भाव, परिग्रह आदि को छोड़कर पवित्र मन से कुटुम्बी जन को भी छोड़कर मधुर वचनों से सबको क्षमा करें। तदनंतर शोक, भय, खेद, क्लेश आदि को भी छोड़कर दूध आदि चिकने पेय पदार्थो को भी छोड़कर कांजी आदि खरपान की वृद्धि करें, फिर खरपान को भी छोड़कर शक्ति के अनुसार उपवास आदि करके तत्परता पूर्वक पंचपरमेष्ठी के ध्यान में मन को लगाते हुए शरीर को छोड़े।

आचार्य अमृतचंद्र सल्लेखना की ऐसी भावना करते हुए कहते हैं–मरण के निकट आने पर होने वाली एक सल्लेखना ही मेरे धर्म रुपी धन को अन्यत्र ले जाने के लिए समर्थ है इस प्रकार निरंतर सल्लेखना की भावना करना चाहिए। पश्चात् मरण काल आने पर अवश्य ही आगमानुसार सल्लेखना विधि करुगाँ इस प्रकार भावनामय होकर मरण काल आने से पहले ही यह सल्लेखना व्रत पालन करना चाहिए। यह बात प्रारंभ में ही कही जा चुकी है कि संकल्प पूर्वक स्वीकार किये गये व्रतों के समय से ही सल्लेखना धारण करना चाहिए।

इस सल्लेखना के बारे में लोक में बहुत सारी भ्रांतियाँ है किन्तु वे भ्रान्तियाँ अज्ञानवश सर्वथा निर्मूल है। उनमें से सल्लेखना आत्महत्या है, ऐसे कुछ अज्ञानी और अन्य मति कहते है, किन्तु जैनाचार्यों ने बहुत ही धैर्यता पूर्वक इस अज्ञानपूर्ण कथन को तर्क द्वारा निराकृत किया है, उसमें आचार्य अमृतचंद्र की युक्ति बहुत महत्त्वपूर्ण है।

अवश्य ही होनहार मरण के होते हुए कषाय सल्लेखना के कृष् करने मात्र व्यापार में प्रवृत्त मनुष्य के रागादिक भावों के अभाव के कारण आत्मघात नहीं है, क्योंकि आत्मघात कोधादि संक्लेश भावो से, श्वास निरोध, जल, अग्नि, विष, शस्त्रादिक द्वारा स्वयं के प्राणों का घात करना आत्मघात कहलाता है। अतः सल्लेखना में इस प्रकार का सक्लेश नहीं है, इसलिए आत्मघात कभी नहीं हो सकता वहाँ तो समाधि मरण को प्रशस्त राग भाव से प्रेरित होकर प्रीति से उस मरण को स्वीकार किया है। आचार्य अमृतचंद्र सल्लेखना व्रत को भी अहिंसा वृद्धि में कारण मानते हैं उनका मार्मिक कथन है कि सल्लेखना के समय हिंसा के कारणभूत कषायादिक परिणाम क्षीणता को प्राप्त होते हैं। इस कारण से सल्लेखना में भी अहिंसा की स्थापना प्रसिद्ध हो जाती है। यहाँ एक प्रश्न होना स्वाभाविक है –ऐसी सल्लेखना से साधक को क्या फल प्राप्त होता है तो आचार्य समन्तभद्र सहज उत्तर देते है–इस सल्लेखना से धर्म का पान होता है। सब दुःखों से अछूता रहता है एवं सुख के समुद्र स्वरुप मोक्ष को पीता है और जब तक मोक्ष प्राप्त नहीं होता है, तब तक स्वार्गादिक सुख की प्राप्ति होती है अर्थात् सल्लेखना के द्वारा निःश्रेयस् और अभ्युदय होता है। मोक्ष निःश्रेयस् कहलाता है स्वार्गादिक के सुख अभ्युदय कहलाते हैं। आचार्य देवसेन ने तो यहाँ तक कहा है कि जो मनुष्य विधि पूर्वक सल्लेखना करता है, वह सात आठ भवों में नियम से मोक्ष प्राप्त करता है। इस विषय में देवसेन आचार्य के आराधनासार ग्रन्थ की कुछ गाथायें अत्यंत उपयोगी है।

सल्लेखना के अतिचार–ऐसी सल्लेखना के कुछ दोषों का वर्णन आचार्य अमृतचंद ने किया है जिन्हें अतिचार के नाम से जाना जाता है–

1.जीविताशंसा–मरण के समय ज्यादा समय तक जीने की इच्छा करना जीविताशंसा है।

2.मरणाशंसा–रोगादिक की पीड़ा के भय से शीघ्र ही मरने की इच्छा करना मरणाशंसा है।

3.मित्रानुराग–पूर्व में मित्रो के साथ की हुई आनंददायी क्रियाओं का स्मरण करना मित्रानुराग है।

4.सुखानुबंध–पूर्व में भोगे हुए अनेक प्रकार के भोगो का चिन्तवन करना सुखानुबंध है।

5.निदान– भविष्य में सुखों की इच्छा करना निदान है।

सल्लेखना के अतिचारों में आचार्य अमृतचंद्र ने आचार्य उमास्वामी का अक्षरशः परिपालन किया है। तत्त्वार्थसूत्र में सल्लेखना के पाँच ही अतिचार गिनाये गये हैं, जिनके नाम भी ज्यों के त्यों हैं। परंतु आचार्य समन्तभद्र इस विषय में थोड़ा सा हटकर चिन्तवन करते हैं इन पाँच अतिचारों में से चार नाम तो ज्यों के त्यों है परंतु चौथे सुखानुबंध के स्थान पर भय नाम का अतिचार दिया है जिस भय नामक अतिचार में इहलोक संबंधी और परलोक संबंधी चर्चा गर्भित है। उनके द्वारा प्राप्त नामों का क्रम इस प्रकार है 1.जीविताशंसा 2.मरणाशंसा 3.मित्रस्मृति 4.भय 5.निदान

सल्लेखना के उपर्युक्त अतिचारों के त्याग करने से सल्लेखना निर्दोष रुप से सिद्ध होती है। साधक को साधना का यर्थाथ फल प्राप्त होता है। जीवन भर पालन किये हुए व्रतों का यथार्थ फल निरतिचार सल्लेखना करने से प्राप्त होता है। सल्लेखना का स्वरुप और अतिचार प्रायः सब आचार शास्त्रों में एक जैसा ही प्राप्त होता है। सभी जैनाचार्यों ने व्रतों के बाद सल्लेखना के स्वरुप कथन पर विशेष जोर दिया है। जैन परंपरा में कुछ ग्रन्थ तो ऐसे है जो सल्लेखना के रुप में बहुप्रचलित हो गये है जिनमें से भगवतीआराधना और मरणकंडिका का नाम अत्यंत प्रसिद्ध है सल्लेखना का स्वरुप बताने में इतनी तर्क और युक्तियों का प्रयोग जैनाचार्यो ने किया है कि किसी के लिए भ्रम और भ्रांति का कोई अवकाश नहीं है। स्वच्छ मन रुपी आकाश के आलोक में विचार किया जाय तो सम्पूर्ण दार्शनिक जगत् में और धार्मिक क्षेत्र में सल्लेखना का स्वरुप और महत्त्व अत्यंत हृदयग्राही तथा अनुकरणीय है। संभवतः संत विनोवाभावे ने इसी कारण सल्लेखना पूर्वक वर्धा में देह का त्याग किया था। महात्मागाँधी भी सल्लेखना के प्रबल समर्थक। प्रेरक थे। उनकी भावना भी थी कि मैं सल्लेखना पूर्वक शरीर का त्याग करु किन्तु दुर्भाग्य राक्षसी इतनी बलवती थी कि उनकी भावनाओं को आहत कर गई। महात्मागाँधी के अध्यात्मिक गुरु श्रीमद् रायचंद्र जी ने भी सल्लेखना पूर्वक इस नश्वर शरीर को अल्पायु में रोगादिक हो जाने के कारण त्याग किया था भारतीय आचार परंपरा में जैन सल्लेखना विधि विशेष स्थान रखती है क्योंकि जैनेतर परंपराओं में कहीं पर भी सल्लेखना विधि का उल्लेख प्राप्त नहीं होता है। व्यक्ति के जन्म में जितना उत्साह होता है उससे भी ज्यादा उत्साह मरण के समय व्यक्ति को हो तो जैनदर्शन उसे सल्लेखना के रुप में परिगणित कर लेता है। जीवन के अंत में मरण को मृत्यु महोत्सव कहना। जैनदर्शन के दार्शनिक वांड्मय में विशेष पहचान है। जैन आचारशास्त्र में सल्लेखना विधि एक रीढ का काम करती है, इसीलिए समस्त जैन आचारशास्त्रों में ऐन केन प्रकारेण सल्लेखना का वर्णन प्राप्त होता है।

संदर्भ

1. पंचास्तिकाय गाथा, 27, 28 की टीका
2. प्रवचनसार, गाथा 9 की टीका
3. पंचास्तिकाय, गाथा 30 की टीका
4. गोम्मटसार जीवकाण्ड, गाथा 171
5. पुरुषार्थसिद्धियुपाय, श्लोक 9
6. तत्त्वार्थसूत्र, 5/61
7. समयसार, आत्मख्याति टीका गाथा 49
8. पंचास्तिकाय, गाथा 109–120 तक टीका
9. जैनदर्शनस्वरुप और विश्लेषण पृष्ट 161
10. राजवार्तिक, 5/25/14–15
11. पंचास्तिकाय, गाथा 79, 80
12. आचारसार, 3/13
13. सर्वार्थसिद्धि, 5/24, तत्त्वार्थवार्तिक, 5/24, 2–6
14. तत्त्वार्थसार 3/67–70,
15. द्वादशांग अनुप्रेक्षा गाथा 66